औरतें अपने हकों के लिए जूझ रही हैं

सुहास कुमार

आज देश में जो नारी जागरूकता, नारी समस्याओं व नारी दृष्टिकोण के प्रति अधिक जागरूकता दिखाई देती है उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। 19वीं सदी के शुरू होने तक समाज में छुआछूत, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, स्त्रियों की शिक्षा व विधवा पुनर्विवाह पर रोक आदि बुराइयां गहरी जड़ पकड़ चुकी थीं। ऐसे समय में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद जैसे महान सामाजिक नेता उभरे और उन्होंने उन बुराइयों का कड़ा विरोध किया।

एक पड़ाव

19वीं सदी के मध्य में महाराष्ट्र के ज्योति बा फूले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले ने लड़कियों की शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह के लिए ठोस रचनात्मक कार्य किया। सावित्री बाई फूले पंद्रह दिन में एक बार विधवाओं की सभा बुलातीं जिसमें उनकी समस्याओं पर विचार किया जाता। ऐसी सोच बनाई जाती कि विधवाएं दुबारा ब्याह करें।

यह शायद देश का पहला महिला संगठन था और सावित्री बाई नारी मुक्ति आंदोलन की पहली नेता। वह अपने पति से शिक्षा लेकर पहली महिला शिक्षक बनीं। लड़कियों का पहला स्कूल खुला। स्त्री-शिक्षा आंदोलन धीरे-धीरे जोर पकड़ता गया और देश में कई स्कूल व कालिज खुले।

महिला संगठनों की शुरुआत

बीसवीं सदी के शुरू में श्रीमती बी.एन. सेन की अध्यक्षता में भारत स्त्री महामंडल और डाक्टर एनी बेसेंट की अध्यक्षता में 'विमेंस इंडियन एसोसिएशन' बने। उस समय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन के अतंर्गत भी महिला समूह सक्रिय था, पर उसके अधिकांश नेता पुरुष थे। महिलाओं के अलग संगठन बनाने का विरोध हुआ। फिर भी यह संगठन सामाजिक बुराइयों जैसे बाल विवाह आदि के खिलाफ आवाज उठाते रहे।

'भारतीय जीवन में औरतों की स्थिति'—महारानी बड़ोदा की इस पुस्तक से महिला आंदोलन को बहुत बढ़ावा मिला। औरतों के सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों के लिए आवाज उठाई जाने लगी। उनके लिए न केवल वोट का अधिकार, बल्कि नगरपालिकाओं और विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व की मांग की जाने लगी। ब्याह की आयु बढ़ाने, देवदासी प्रथा का खात्मा, हिंदू स्त्री का अपने पति की संपत्ति में अधिकार आदि की मांग भी उठनी शुरू हुई।

'अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस' 1927 में

बनी। इसका उद्देश्य सिर्फ स्त्रियों से संबंधित शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक मसलों पर स्त्री हितों के लिए काम करना था।

इन सभी संगठनों की सदस्य आमतौर से उच्च सामाजिक वर्ग की स्त्रियां थीं। शायद इसी कारण इन संगठनों का रवैया संघर्षात्मक नहीं रहा।

नई दिशा

1930 के दशक में आज़ादी की लड़ाई ने जोर पकड़ा। गांधी जी के आह्वान पर समाज के लगभग सभी वर्गों की औरतें घरों से बाहर निकलीं। उन्होंने इस लड़ाई में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया।

आजादी के बाद जागरूक औरतों ने अपने अधिकारों की लड़ाई जारी रखी। औरतों के जीवन पर बुरा असर डालने वाले सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ़ सामूहिक आवाज उठाई गई। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर के अधिकार, बराबर का दर्जा और प्रगति के बराबर के अवसरों की मांग की गई।

दो जुझारू महिला संगठन बने। 1954 में 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमेन' और 1959 में 'समाजवादी महिला सभा' जैसे संगठन शुरू हुए।

किसान व मजदूर औरतों का संघर्ष

मिलों, फैक्टरियों, चाय बागानों, खेत-खलिहानों की औरतों की लड़ाई उनकी जिंदगी से जुड़े मुद्दों से संबंधित रही। न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटों की सीमा, पालना घर, जीवन की न्यूनतम सुविधाएं आदि मुद्दों पर किसान व मजदूर औरतों की लड़ाई केंद्रित रही। वे पुरुष मजदूरों व किसानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने हकों के लिए लड़ीं।

डेंगुआझर के चाय बागान की मजदूरनी मैली छेत्री ने 1946 में एक यूनियन बनाई और लगभग 1,800 मजदूर औरतों का नेतृत्व किया। तेलंगाना संघर्ष में भी औरतों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और पुरुषों के साथ मिलकर विरोध प्रदर्शनों में भाग लिया। खेतिहर मजदूरों की हड़तालों में भी उन्होंने बड़ी संख्या में भाग लिया। जमींदारों के गल्ले पर कब्जा करने के संघर्ष में हिस्सा लेकर उन्हें दो-तीन सेर की बजाय चार सेर अनाज की मजदूरी देने पर मजबूर किया।

सूर्यपेट (तेलंगाना) संघर्ष में जैसा हुआ वह पहले कभी नहीं देखा गया। एक ओर औरतें निहत्थी थीं, दूसरी ओर सेना के जवान उन्हें बंदूकों के कुंदों से मार रहे थे। लगभग 8000 मज़दूर औरतों का संगठन एक किसान की बेटी सूर्यवती ने बनाया।

1960 के दशक में कम्युनिस्ट पार्टी ने मज़दूर महिलाओं को संगठित किया। ट्रेड यूनियनों में उनकी भागीदारी बढ़ी। केरल, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और तामिलनाडू में वे विशेष रूप से सक्रिय हुईं। नक्सलबाड़ी आंदोलन ने जोर पकड़ा जिसमें आंध्र प्रदेश, बिहार, केरल और पश्चिम बंगाल की औरतों ने सक्रिय भाग लिया। उनका संघर्ष आर्थिक शोषण के खिलाफ था। सामाजिक

बुराइयों जैसे दहेज, मारपीट और यौन हिंसा आदि मुद्दों को नहीं उठाया गया

संघर्ष का फैलाव

1970 के दशक तक महिला आंदोलन में परिपक्वता दिखाई देने लगी। देश के कोने-कोने में महिला संगठन बने और नारी जीवन से जुड़े अनेक मुद्दों को उठाया जाने लगा। मंहगाई, राशन की कालाबाजारी, मिलावट, पानी की कमी से लेकर दहेज, पारिवारिक व यौन हिंसा और बलात्कार आदि मुद्दों पर जोरदार आवाज उठाई गई। धरनों, रैलियों और जलूसों में हजारों की संख्या में औरतें भाग लेने लगीं। मंहगाई के खिलाफ महाराष्ट्र में हजारों स्त्रियां थाली, बेलन और झाड़ू लेकर सड़कों पर निकल आईं।

दहेज के खिलाफ दहेज-विरोधी चेतना मंच और कई अन्य संगठनों ने कानून को और सख्त बनाने की मांग रखी। जगह-जगह प्रदर्शन हुए। दहेज कानून में संशोधन हुआ। दहेज और पारिवारिक हिंसा से पीड़ित औरतों की सुनवाई के लिए कई शहरों में विशेष पुलिस इकाइयां बनीं।

मथुरा बलात्कार मामले को लेकर महिला संगठनों ने जमकर संघर्ष किया। 14 साल की आदिवासी लड़की मथुरा का पुलिस थाने में बलात्कार किया गया। अपराधी अदालत से छूट गए। पर समूचे देश में औरतों ने मिलकर प्रदर्शन किए और खुलकर पुलिस के रवैये और अदालत के फ़ैसले का विरोध किया। इसी तरह के कुछ अन्य मामलों में महिला संगठनों ने संघर्ष जारी रखा। फलस्वरूप बलात्कार कानून में सुधार हुआ और उसे ज्यादा सख्त बनाया गया।

सामाजिक मुद्दों के साथ-साथ औरतों ने

रोजमर्रा की दिक्कतों के खिलाफ भी आंदोलन चलाए। इनमें महत्वपूर्ण है 'चिपको आंदोलन'। पहाड़ी क्षेत्रों में जलावन की लकड़ी इकट्ठा करने औरतों को मीलों चलना पड़ता है। ऊपर से ठेकेदारों ने जंगलात के पेड़ काटने का लाइसेंस ले लिया। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों की औरतों ने इन ठेकेदारों और सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। सरकारी अफसरों ने पुरुषों को तो डरा-धमका कर पेड़ काटने के लिए राजी कर लिया, लेकिन औरतें अपने फैसले पर डटी रहीं। फरवरी 1978 की बात है। निहत्थी और अनपढ़ औरतें पेड़ों को अपनी बाहों में घेर कर खड़ी हो गईं। औरतें मानो पेड़ों से चिपक ही गईं। कुल्हाड़ी व आरों से लैस ठेकेदार के आदमियों को पुलिस की मदद के बावजूद पीछे हटना पड़ा।

अहमदाबाद (गुजरात) में सब्जी बेचने वाली, छोटे-मोटे रोजगारों से जुड़ी और मजदूर औरतों को

संगठित किया 'सेवा' संस्था ने। पटरी पर सामान बेचने वाली औरतों को आए दिन म्युनिसिपल कमेटी के कर्मचारी तंग करते। कभी उनका सामान उठा ले गए तो कभी वहीं फेंक दिया। औरतों को सामान खरीदने के लिए धन की भी बहुत दिक्कत होती। मजदूर औरतों की दिक्कतें और भी ज्यादा थीं। इन सब दिक्कतों को सुलझाया 'सेवा' संस्था ने और औरतों को उचित सुविधाएं देने के लिए सरकारी तंत्र से संघर्ष भी किया।

पश्चिमी देशों का असर

हमारे देश की पढ़ी-लिखी महिलाएं पश्चिमी देशों के महिला आंदोलनों से भी प्रभावित हुईं। स्त्री को पूर्ण इंसान का दर्जा न देकर 'वस्तु' मानने के खिलाफ अभियान शुरू हुए। शुरू में उनका मजाक भी उड़ाया गया। पुरुष-विरोधी होने के लिए उनकी निंदा की गई। यह भी कहा गया कि बदसूरत या असफल औरतें हीं इस आंदोलन की अगुवा हैं। पर महिला संगठन बनते गए। गरीबों व दलितों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले संगठन भी महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न के विरोध में सक्रिय भागीदार बने।

जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 में महिला दशक घोषित किया तो अनेक महिला संगठनों ने जन्म लिया। इन संगठनों ने विशेष रूप से जागरूकता अभियान चलाए, पत्रिकाएं प्रकाशित कीं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के ज़रिए सामाजिक सोच बदलने पर जोर दिया। बंबई के स्त्री मुक्ति संगठन ने महिला मुक्ति संबंधी गानों व नाटकों की रचना की और प्रदर्शन किए। महाराष्ट्र के ही 'पुरोगामी स्त्री संगठन' ने द्विमासिक पत्रिका 'बेजा' प्रकाशित की जिसमें फिल्मों में औरतों के शरीर के प्रदर्शन के खिलाफ आवाज उठाई। समाजवादी महिला संगठन ने मुख्य रूप से 'नारीवाद' पर चर्चा शुरू की।

महिलाओं को एक दूसरे के कामों की जानकारी देने और समाज का औरतों के प्रति सही नज़रिया तैयार करने के लिए कई मंच बने, कार्यशालाएं हुईं और पत्र-पत्रिकाएं निकलीं। संगठनों की श्रृंखला बढ़ती गई।

दिल्ली में 'महिला दक्षता समिति' व 'स्त्री संघर्ष' दो संगठन बने। महिलाओं के उत्पीड़न के खिलाफ एक साझा मंच बना जिसकी ज्यादातर सदस्याएं पढ़ी-लिखी और मध्यम वर्ग की थीं। अलग-अलग राज्यों में भी महिला संगठनों ने आवाज उठाई। 'छत्तीसगढ़ महिला जागृति संगठन' व 'महिला मुक्ति मोर्चा' (मध्य प्रदेश) और 'महिला जागृति केंद्र' (बिहार) ने आदिवासी व अन्य महिलाओं को संगठित किया।

कई सरकारी कार्यक्रमों ने भी महिला आंदोलन को बल दिया। राजस्थान में महिला विकास योजना और उत्तर प्रदेश, गुजरात व कर्नाटक में महिला सामाख्या योजना ने ग्रामीण महिलाओं में उत्साह की नई लहर पैदा की। साक्षरता कार्यक्रम से आंध्र प्रदेश के नैल्लोर जिले की नवसाक्षर बहनों ने एक नये आंदोलन की शुरुआत की—शराब का विरोध। यह आंदोलन अन्य राज्यों में भी तेजी से फैल रहा है और इसकी अगुवानी कर रही हैं औरतें।

आत्मविश्वास बढ़ा

महिला आंदोलन का ही नतीजा है कि आम जनता में उनके नज़रिये के प्रति जागरूकता आई है और स्वयं उनमें नया आत्मविश्वास। आज हर

नया कानून

हिंदू विवाह अधिनियम ने औरतों को अधिक अधिकार दिए। अधिनियम के खास मुद्दे हैं—

विधवा दूसरा ब्याह कर सकती है।

बाल-विवाह अपराध माना गया। ब्याह के समय लड़की की उम्र कम से कम 18 साल और लड़के की 21 साल होनी चाहिए

यदि पति नामर्द है और शादी परिपूर्ण नहीं हुई है तो पत्नी अदालत से ब्याह को रद्द करा सकती है।

पहली पत्नी की मौजूदगी छिपाई गई हो तो दूसरी पत्नी पति के खिलाफ मुकदमा दायर कर सकती है और पति से मुआवजा व गुजारा पा सकती है।

अगर बिना किसी ठोस कारण पति पत्नी को छोड़ देता है या साथ रहकर भी विवाहित जीवन पूरा नहीं करता तो अदालत पति को आदेश दे सकती है कि वह अपने कर्त्तव्य निभाए।

तलाक-संबंधी सुधार

हिंदू तलाकशुदा या छोड़ी हुई स्त्री को पति से गुजारा-भत्ता पाने का कानूनी हक है। तलाक की कार्यवाही का खर्च भी पति देगा।

सात साल की उम्र तक बच्चे को रखने का मां का कानूनी हक है। अगर मां की कोई आमदनी नहीं है तो बच्चे का खर्च पिता देगा।

ओर लड़कियों के प्रति भेदभाव का जोरदार विरोध हो रहा है। गलत कानूनों को चुनौतियां दी जा रही हैं। औरतों को स्वयं महसूस हुआ है कि वे अपना भाग्य काफी हद तक स्वयं बना सकती हैं। □

कानून में दिए हालातों में पत्नी भी पति से तलाक ले सकती है।

संपत्ति-संबंधी हक

औरत अपने पति की संपत्ति में हिस्सा पाने की हकदार है। उस संपत्ति का वह अपनी मनमर्जी उपयोग व वसीयत कर सकती है।

औरत का अपनी कमाई पर पूरा हक है।

औरत को अपने माता-पिता या दूसरे रिश्तेदारों से भी संपत्ति में हिस्सा मिल सकता है।

अगर कोई व्यक्ति बिना वसीयत मर जाता है तो उसकी संपत्ति उसके बेटों, बेटियों, पत्नी और मां में बराबर-बराबर बंटेगी। पर यह व्यवस्था बाप-दादा की संपत्ति पर लागू नहीं है। □